श्री वीरेंद्र याज्ञिक को सुनना यानि...तृप्त होकर अतृप्त रह जाना

मुंबई शहर में यूँ तो किसी भी आयोजन में कुछ लोगों को इकठ्ठा करना ही मुश्किल होता है और इकठ्ठे भी हो जाए तो कार्यक्रम में पूरे समय मौजूद रहें ये संभावना बहुत कम होती है, उस पर भी अगर धार्मिक प्रवचन जैसा गूढ़ गंभीर कार्यक्रम हो और लोग पूरी तन्मयता से ढाई घंटे तक पूरी श्रध्दा और तन्मयता से बैठे रहें तो ये कमाल श्री वीरेंद्र याज्ञिक की वाणी का ही हो सकता है। श्री वीरेंद्र याज्ञिक को सुनना ऐसा है मानो कोई कुशल रसोईया दूध से तरह-तरह की मिठाईयाँ बनाकर परोस दे और हर मिठाई का स्वाद उसे ज्यादा से ज्यादा खाने कों मजबूर कर दे, लेकिन मिठाई तो पेट की तृप्ति तक ही खाई जा सकती है ; श्री वीरेंद्र याज्ञिक जब अपना प्रवचन शुरु करते हैं तो उनका एक एक शब्द नई नई मिठाई की तरह अलग अलग स्वाद,संप्रेषण और अर्थ लेकर श्रोताओं को रससिक्त करता जाता है और जितना सुनो, उससे ज्यादा सुनने की भूख बढ़ती जाती है, यानि आप तृप्त होकर भी अतृप्त रह जाते हैं।

जहाँ लोग ढाई घंटे की फिल्म में ही इंटरवेल का इंतजार करते हैं और अच्छे से अच्छे मनोरंजन कार्यक्रम में अंतराल ज़रुरी हो जाता है, वीरेंद्र याज्ञिक को श्रोता पूरे ढाई घंटे तक सुनते ही नहीं हैं बल्कि एकमत से कहते हैं कि आप अपनी बात जारी रखिए हम आपको सुनने आए हैं। भरपूर बारिश की शाम होने के बावजूद दूर-दूर से लोग श्री याज्ञिक को सुनने आए और पूरे समय सुनते रहे।

मुंबई के धर्मनिष्ठ एवँ समाजसेवी परिवार श्री प्रेम अग्रवाल के घर गीता पर आयोजित जिस प्रवचन में याज्ञिक जी को गीता के चौथे अध्याय पर अपना आख्यान देना था, उसकी भूमिका को समझाने में ही ढाई घंटे पूरे हो गए और जहाँ से बात शुरु होना थी, वह तो शुरू ही नहीं हो पाई। लेकिन इस भूमिका को याज्ञिक जी ने अपनी शब्द संपदा को जिस सहजता, गंभीरता और रसिकता के साथ एकाकार किया वह अपने आप में एक अद्भुत अनुभव था। यह न तो किसी कथाकार की कथा थी, न धर्म की कोई गंभीर चर्चा, लेकिन याज्ञिकजी के शब्दों ने श्रोताओं को ऐसा बाँधा कि याज्ञिक जो को ही श्रोताओं की असहमति के बावजूद अपने आख्यान की समाप्ति की घोषणा करना पड़ी।

महाभारत के युध्द में कृष्ण -अर्जुन संवाद की सटीक व्याख्या करते हुए श्री याज्ञिक ने कहा कि कृष्ण (भगवान) को आप तभी पा सकते हैं जब आप अर्जुन की तरह अहंकार मुक्त हो जाएँ। गीता हमें सिखाती है कि जीवन को कैसे जिया जाए। जीवन के हर क्षण को आनंदमयी कैसे बनाया जाए। देवासुर संग्राम को परिभाषित करते हुए याज्ञिकजी ने कहा कि हमारे ह्रदय में 24 घंटे सुर-असुर संग्राम चलता

रहता है, हमारे सकारात्मक विचार हमें कुछ अच्छा करने को प्रेरित करते हैं तो बुरे विचार गलत रास्ते पर जाने को मजबूर करते हैं, अगर हम अपने मन से हार जाते हैं तो हमारे अंदर का असुर जीत जाता है। गीता हमें हमारे अंदर बैठे असुर से जीतना सिखाती है।

यज्ञ की रोचक व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि यज्ञ मात्र अग्नि को हवन सामग्री समर्पित करना नहीं बल्कि एक संस्कार है। हमारा दिन-प्रतिदिन का आचरण, सामूहिक परिवार में जीना, समाज के प्रति देने की भावना होना यज्ञ की परिभाषा में आते हैं। हमारे सोलह संस्कार भी यज्ञ का ही प्रतिरूप है। यज्ञ का अर्थ है यजन, संगति और समर्पण। अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि अश्वमेध यज्ञ कोई घोड़े की बलि देने या किसी चक्रवर्ती राजा द्वारा किसी घोड़े को अपनी विजय के लिए छोड़ने से कोई संबंध नहीं है। अश्व का अर्थ है हमारा मन और मेध का मतलब है उस पर नियंत्रण. यानि जो अपने मन पर नियंत्रण कर लेता है वह अश्वमेध यज्ञ कर लेता है। एक राजा अपने मन पर काबू कर लेगा तभी वह प्रजा को सुखी रख पाएगा, यही उसके लिए अश्वमेध यज्ञ है। उन्होंने कहा कि हमारी भारतीय संस्कृति ने हमें यज्ञ से लेलक जीवन के जो भी संस्कार दिए हैं इसके लिए हमें हमारे पूर्वजों और ऋषियों का ऋणी होना चाहिए।

वृहदारण्य उपनिषद् की एक कथा का के माध्यम से उन्होंने यज्ञ के महत्व और इसके निहितार्थ को समझाते हुए बताया कि महर्षि उद्दालक ने यज्ञ का आयोजन किया था, महर्षि उषस्थ चक्रमण ने अपने एक शिष्य को एक किशमिश देकर यह कहकर महर्षि उद्दालक के पास भेजा कि उन्हें यज्ञ के लिए मेरी ओर से ये भेंट देकर निवेदन करें कि इस किश्मिश को सभी अतिथियों में बाँट दे। शिष्य को तो बात ही बेसिरपैर की लगी, लेकिन गुरूकी आज्ञा थी तो वह गया और वह किश्मिश अपने गुरू के संदेश के साथ महर्षि उद्दालक को भेंट कर दी। महर्षि उद्दालक के शिष्यों को ये बात बेहद अपमानजकन लगी कि इतने बड़े यज्ञ में इतने अतिथियों के लिए एकमात्र किश्मिश भेजकर उषस्थ चक्रमण ने हमारे गुरू का अपमान किया है ; लेकिन महर्षि उद्दालक ने वह किश्मिश प्रेम पूर्वक स्वीकार करते हुए उसे भोजनशाला में बन रही खीर में डलवा दिया। और फिर बदले में महर्षिउषस्थ चक्रमण के शिष्य को आश्वस्त किया कि आपके गुरू की आज्ञा के अनुसार यह किश्मिश यज्ञ मेंआए सभी अतिथियों को बाँट दी जाएगी। फिर बदले में महर्षि उद्दालक ने एक तिल उस शिष्य को दिया और कहा कि ये तिल अपने गुरू को दें और उनसे निवेदन करें कि वे इसे ब्रह्माँड के समस्त प्राणियों में बाँट दे। शिष्य को तो बात ही समझ में नहीं आई,एक तिल और पूरे ब्रह्माँड में बाँटना है। लेकिन फिर भी शिष्य वह तिल लेकर गया और अपने गुरू उषस्थ चक्रमण को सौंप दिया।महर्षि चक्रमण ने बड़े अहोभाव के साथ उस तिल को स्वीकार किया और उसतिल को यज्ञ सामग्री में डलवा दिया। यज्ञ सामग्री के माध्यम से वह तिल अग्नि और धुएँ के रूप में संपूर्ण संसार के प्राणियों तक पहुँच गया।

श्री वीरेंद्र याज्ञिक ने ऐसे कई रोचक, प्रेरक और अनुकरणीय प्रसंगों के साथ गीता, यज्ञ, भारतीय संस्कृति, पारिवारिक मूल्य, हमारी परंपरा, और मूल्यों के महत्व को रेखांकित करते हुए हमारी अपनी भाषा और भूषा के प्रति हमारी सोच को लेकर एक नए आयाम को प्रस्तुत किया।

श्री वीरेंद्र याज्ञिक का व्यक्तित्व भी अपने आप में एक अलग पहचान रखता है। पहनावे में न तो भगवा चोला और न पंडितों व कथाकारों जैसा कोई आडंबर, व्यास पीठ पर जब प्रवचन करने बैठे तो ऐसा नहीं

लगता है कि कोई संत महात्मा धार्मिक किताबों के रटे-रटाए किस्से सुना रहा है बल्कि ऐसा लगता है किअपने ही बीच का कोई व्यक्ति हमारी अपनी उलझनों, समस्याओं और परेशानियों से उबरने का कोई नुस्खा बता रहा है। व्यास पीठ छोड़ते ही सभी लोगों के साथ उसी आत्मीयता व अपनेपन से मिलना और सामाजिक व पारिवारिक विषयों में मशगूल हो जाना उनकी खासियत है। उनके चाहने वालों में स्कूल जाने वाले बच्चों से लेकर कॉलेज जाने वाली युवा पीढ़ी और दो से तीन पीढ़ियों को देख रहे बुजुर्ग सब शामिल हैं।

मुंबई के सत्संग परिवार द्वारा मुंबई की आपाधापी भरी जीवन शैली में सुकून के दो पल तलाशने और धार्मिक व पारिवारिक मूल्यों को बचाने की दिशा में सार्थक पहल की शुरुआत 18 साल पहले की थी। उद्योग और व्यापार से जुड़ा मुंबई का धर्मनिष्ठ मारवाड़ी समाज सक्रिय रुप से इस यात्रा को एक नई ऊंचाई प्रदान कर रहा है, और ऐसा हो भी क्यों न हो, जब श्री वीरेंद्र याज्ञिक जैसा व्यक्तित्व एक प्रेरणा पुंडज की तरह काम करे।

श्री वीरेंद्र याज्ञिक जी का सुंदर कांड का पाठ भी अपने आप में एक रोमांचक अनुभव है, इसका भी आनंद लीजिए।